भगतसिंह (1928)

धर्म और हमारा स्वतन्त्रता संग्राम

मई, 1928 के 'किरती' में यह लेख छपा। जिसमें भगत सिंह ने धर्म की समस्या पर प्रकाश डाला है।

अमृतसर में 11-12-13 अप्रैल को राजनीतिक कान्फ्रेंस हुई और साथ ही युवकों की भी कान्फ्रेंस हुई। दो-तीन सवालों पर इसमें बड़ा झगड़ा और बहस हुई। उनमें से एक सवाल धर्म का भी था। वैसे तो धर्म का प्रश्न कोई न उठाता, किन्तु साम्प्रदायिक संगठनों के विरुद्ध प्रस्ताव पेश हुआ और धर्म की आड़ लेकर उन संगठनों का पक्ष लेने वालों ने स्वयं को बचाना चाहा। वैसे तो यह प्रश्न और कुछ देर दबा रहता, लेकिन इस तरह सामने आ जाने से स्पष्ट बातचीत हो गयी और धर्म की समस्या को हल करने का प्रश्न भी उठा। प्रान्तीय कान्फ्रेंस की विषय समिति में भी मौलाना जफर अली साहब के पाँच-सात बार खुदा-खुदा करने पर अध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल ने कहा कि इस मंच पर आकर खुदा-खुदा न कहें। आप धर्म के मिशनरी हैं तो मैं धर्महीनता का प्रचारक हूँ। बाद में लाहौर में भी इसी विषय पर नौजवान सभा ने एक मीटिंग की। कई भाषण हुए और धर्म के नाम का लाभ उठाने वाले और यह सवाल उठ जाने पर झगड़ा हो जाने से डर जाने वाले कई सज्जनों ने कई तरह की नेक सलाहें दीं।

सबसे ज़रूरी बात जो बार-बार कही गयी और जिस पर श्रीमान भाई अमरसिंह जी झबाल ने विशेष ज़ोर दिया, वह यह थी कि धर्म के सवाल को छेड़ा ही न जाये। बड़ी नेक सलाह है। यदि किसी का धर्म बाहर लोगों की सुख-शान्ति में कोई विघ्न डालता हो तो किसी को भी उसके विरुद्ध आवाज़ उठाने की जरूरत हो सकती है? लेकिन सवाल तो यह है कि अब तक का अनुभव क्या बताता है? पिछले आन्दोलन में भी धर्म का यही सवाल उठा और सभी को पूरी आज़ादी दे दी गयी। यहाँ तक कि कांग्रेस के मंच से भी आयतें और मंत्रा पढ़े जाने लगे। उन दिनों धर्म में पीछे रहने वाला कोई भी आदमी अच्छा नहीं समझा जाता था। फलस्वरूप संकीर्णता बढ़ने लगी। जो दुष्परिणाम हुआ, वह किससे छिपा है? अब राष्ट्रवादी या स्वतंत्राता प्रेमी लोग धर्म की असलियत समझ गये हैं और वही उसे अपने रास्ते का रोड़ा समझते हैं।

बात यह है कि क्या धर्म घर में रखते हुए भी, लोगों के दिलों में भेदभाव नहीं बढ़ता? क्या उसका देश के पूर्ण स्वतंत्राता हासिल करने तक पहुँचने में कोई असर नहीं पड़ता? इस समय पूर्ण स्वतंत्राता के उपासक सज्जन धर्म को दिमागी गुलामी का नाम देते हैं। वे यह भी कहते हैं कि बच्चे से यह कहना किμईश्वर ही सर्वशक्तिमान है, मनुष्य कुछ भी नहीं, मिट्टी का पुतला हैμबच्चे को हमेशा के लिए कमज़ोर बनाना है। उसके दिल की ताव़$त और उसके आत्मविश्वास की भावना को ही नष्ट कर देना है। लेकिन इस बात पर बहस न भी करें और सीधे अपने सामने रखे दो प्रश्नों पर ही विचार करें तो हमें

नज़र आता है कि धर्म हमारे रास्ते में एक रोड़ा है। मसलन हम चाहते हैं कि सभी लोग एक-से हों। उनमें पूँजीपतियों के ऊँच-नीच की छूत-अछूत का कोई विभाजन न रहे। लेकिन सनातन धर्म इस भेदभाव के पक्ष में है। बीसवीं सदी में भी पण्डित, मौलवी जी जैसे लोग भंगी के लड़के के हार पहनाने पर कपड़ों सहित स्नान करते हैं और अछूतों को जनेऊ तक देने की इन्कारी है। यदि इस धर्म के विरुद्ध कुछ न कहने की कसम ले लें तो चुप कर घर बैठ जाना चाहिये, नहीं तो धर्म का विरोध करना होगा। लोग यह भी कहते हैं कि इन बुराइयों का सुधार किया जाये। बहुत खूब! अछूत को स्वामी दयानन्द ने जो मिटाया तो वे भी चार वर्णों से आगे नहीं जा पाये। भेदभाव तो फिर भी रहा ही। गुरुद्वारे जाकर जो सिख 'राज करेगा खालसा' गायें और बाहर आकर पंचायती राज की बातें करें, तो इसका मतलब क्या है?

धर्म तो यह कहता है कि इस्लाम पर विश्वास न करने वाले को तलवार के घाट उतार देना चाहिये और यदि इधर एकता की दुहाई दी जाये तो परिणाम क्या होगा? हम जानते हैं कि अभी कई और बड़े ऊँचे भाव की आयतें और मंत्रा पढ़कर खींचतान करने की कोशिश की जा सकती है, लेकिन सवाल यह है कि इस सारे झगड़े से छुटकारा ही क्यों न पाया जाये? धर्म का पहाड़ तो हमें हमारे सामने खड़ा नज़र आता है। मान लें कि भारत में स्वतंत्राता-संग्राम छिड़ जाये। सेनाएँ आमने-सामने बन्दूकें ताने खड़ी हों, गोली चलने ही वाली हो और यदि उस समय कोई मुहम्मद गौरी की तरहµजैसी कि कहावत बतायी जाती हैµआज भी हमारे सामने गायें, सूअर, वेद-वु$रान आदि चीज़ें खड़ी कर दे, तो हम क्या करेंगे? यदि पक्के धार्मिक होंगे तो अपना बोरिया-बिस्तर लपेटकर घर बैठ जायेंगे। धर्म के होते हुए हिन्दू-सिख गाय पर और मुसलमान सूअर पर गोली नहीं चला सकते। धर्म के बड़े पक्के इन्सान तो उस समय सोमनाथ के कई हजार पण्डों की तरह ठाकुरों के आगे लोटते रहेंगे और दूसरे लोग धर्महीन या अधर्मी-काम कर जायेंगे। तो हम किस निष्कर्ष पर पहंुचे? धर्म के विरुद्ध सोचना ही पड़ता है। लेकिन यदि धर्म के पक्षवालों के तर्क भी सोचे जायें तो वे यह कहते हैं कि दुनिया में अँधेरा हो जायेगा, पाप पढ़ जायेगा। बहुत अच्छा, इसी बात को ले लें।

रूसी महात्मा टॉल्स्टॉय ने अपनी पुस्तक (Essay and Letters) में धर्म पर बहस करते हुए उसके तीन हिस्से किये किये हैं –

1. Essentials of Religion, यानी धर्म की ज़रूरी बातें अर्थात सच बोलना, चोरी न करना, गरीबों की सहायता करना, प्यार से रहना, वगैरा।

2. Philosophy of Religion, यानी जन्म-मृत्यु, पुनर्जन्म, संसार-रचना आदि का दर्शन। इसमें आदमी अपनी मर्जी के अनुसार सोचने और समझने का यत्न करता है।

3. Rituals of Religion, यानी रस्मो-रिवाज़ वगैरा। मतलब यह कि पहले हिस्से में सभी धर्म एक हैं। सभी कहते हैं कि सच बोलो, झूठ न बोलो, प्यार से रहो। इन बातों को कुछ सज्जनों ने Individual Religion कहा है। इसमें तो झगड़े का प्रश्न ही नहीं उठता। वरन यह कि ऐसे नेक विचार हर आदमी में होने चाहिये। दूसरा फिलासफी का प्रश्न है। असल में कहना पड़ता है कि Philosophy is the out come of Human weakness, यानी फिलासफी आदमी की कमजोरी का फल है। जहाँ भी आदमी देख

सकते हैं। वहाँ कोई झगड़ा नहीं। जहाँ कुछ नज़र न आया, वहीं दिमाग लड़ाना शुरू कर दिया और ख़ास-ख़ास निष्कर्ष निकाल लिये। वैसे तो फिलासफी बड़ी जरूरी चीज़ है, क्योंकि इसके बगैर उन्नति नहीं हो सकती, लेकिन इसके साथ-साथ शान्ति होनी भी बड़ी ज़रूरी है। हमारे बुजुर्ग कह गये हैं कि मरने के बाद पुनर्जन्म भी होता है, ईसाई और मुसलमान इस बात को नहीं मानते। बहुत अच्छा, अपना-अपना विचार है। आइये, प्यार के साथ बैठकर बहस करें। एक-दूसरे के विचार जानें। लेकिन 'मसला-ए-तनासुक' पर बहस होती है तो आर्यसमाजियों व मुसलमानों में लाठियाँ चल जाती हैं। बात यह कि दोनों पक्ष दिमाग को, बुद्धि को, सोचने-समझने की शक्ति को ताला लगाकर घर रख आते हैं। वे समझते हैं कि वेद भगवान में ईश्वर ने इसी तरह लिखा है और वही सच्चा है। वे कहते हैं कि कुरान शरीफ़$ में खुदा ने ऐसे लिखा है और यही सच है। अपने सोचने की शक्ति, (Power of Reasoning) को छुट्टी दी हुई होती है। सो जो फिलासफी हर व्यक्ति की निजी राय से अधिक महत्त्व न रखती हो तो एक ख़ास फिलासफी मानने के कारण भिन्न गुट न बनें, तो इसमें क्या शिकायत हो सकती है।

अब आती है तीसरी बात - रस्मो-रिवाज़। सरस्वती-पूजावाले दिन, सरस्वती की मूर्ति का जुलूस निकलना ज़रूरी है उसमें आगे-आगे बैण्ड-बाजा बजना भी ज़रूरी है। लेकिन हैरीमन रोड के रास्ते में एक मस्जिद भी आती है। इस्लाम धर्म कहता है कि मस्जिद के आगे बाजा न बजे। अब क्या होना चाहिये? नागरिक आज़ादी का हक (Civil rights of citizen) कहता है कि बाज़ार में बाज़ा बजाते हुए भी जाया जा सकता है। लेकिन धर्म कहता है कि नहीं। इनके धर्म में गाय का बलिदान ज़रूरी है और दूसरे में गाय की पूजा लिखी हुई है। अब क्या हो? पीपल की शाखा कटते ही धर्म में अन्तर आ जाता है तो क्या किया जाये? तो यही फिलासफी व रस्मो-रिवाज़ के छोटे-छोटे भेद बाद में जाकर (National Religion) बन जाते हैं और अलग-अलग संगठन बनने के कारण बनते हैं। परिणाम हमारे सामने है।

सो यदि धर्म पीछे लिखी तीसरी और दूसरी बात के साथ अन्धविश्वास को मिलाने का नाम है, तो धर्म की कोई ज़रूरत नहीं। इसे आज ही उड़ा देना चाहिये। यदि पहली और दूसरी बात में स्वतंत्रा विचार मिलाकर धर्म बनता हो, तो धर्म मुबारक है।

लेकिन अगल-अलग संगठन और खाने-पीने का भेदभाव मिटाना ज़रूरी है। छूत-अछूत शब्दों को जड़ से निकालना होगा। जब तक हम अपनी तंगदिली छोड़कर एक न होंगे, तब तक हमें वास्तविक एकता नहीं हो सकती। इसलिए ऊपर लिखी बातों के अनुसार चलकर ही हम आजादी की ओर बढ़ सकते हैं। हमारी आज़ादी का अर्थ केवल अंग्रेजी चंगुल से छुटकारा पाने का नाम नहीं, वह पूर्ण स्वतंत्राता का नाम हैμजब लोग परस्पर घुल-मिलकर रहेंगे और दिमागी गुलामी से भी आज़ाद हो जायेंगे।

आभार : यह फाइल आरोही, ए-2/128, सैक्टर-11, रोहिणी, नई दिल्ली – 110085 द्वारा प्रकाशित संकलन 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' (सम्पादक : राजेश उपाध्याय एवं मुकेश मानस) के मूल फाइल से ली गयी है।

Date Written: May 1928
Author: Bhagat Singh

Title: Religion and our freedom struggle (Dharm aur hamara swatantrata sangram)
First Published: in Punjabi monthly Kirti in May 1928

* **Courtesy**: This file has been taken from original file of Aarohi Books' publication Inquilab Zidadad-A Collection of Essays by Bhagat Singh and his friends, edited by Rajesh Upadhyaya and Mukesh Manas.

भगतसिंह